International Journal of Leading Research Publication (IJLRP)

E-ISSN: 2582-8010 ● Website: www.ijlrp.com ● Email: editor@ijlrp.com

मीरा बाई के काव्य में आध्यात्मिक स्वतंत्रता और व्यक्तिगत मुक्ति की अवधारणा

शोधार्थी - डॉ.शैफाली राजवाल

फेकल्टी, स्कूल ऑफ सोशल साइंस, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय. इंदौर

सारांश - मीरा बाई मध्यकालीन भक्ति आंदोलन की प्रमुख संत-कवयित्री थीं, जिनके काव्य में आध्यात्मिक स्वतंत्रता, व्यक्तिगत मुक्ति तथा ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम का अद्वितीय समन्वय दिखाई देता है। उनका संपूर्ण काव्य श्रीकृष्ण के प्रति निष्काम भक्ति पर आधारित है, जिसमें सामाजिक बंधनों, जातिगत भेदभाव, रूढ़ियों तथा राजसी मर्यादाओं का स्पष्ट विरोध दिखाई देता है। मीरा ने अपने जीवन और काव्य के माध्यम से यह स्थापित किया कि आत्मा की वास्तविक स्वतंत्रता केवल ईश्वर-भक्ति और आत्मसमर्पण से ही संभव है। मीरा की आध्यात्मिक स्वतंत्रता का अर्थ बाहरी बंधनों से मुक्ति के साथ-साथ आंतरिक चेतना के जागरण से भी है। उन्होंने सांसारिक वैभव, पारिवारिक अपेक्षाओं और सामाजिक प्रतिबंधों को त्यागकर व्यक्तिगत आध्यात्मिक मार्ग का चयन किया। उनके पदों में कृष्ण के प्रति प्रेम केवल धार्मिक आस्था नहीं, बल्कि आत्मा और परमात्मा के दिव्य मिलन का प्रतीक है। यही प्रेम उन्हें निर्भयता, आत्मविश्वास और सामाजिक प्रतिरोध की शक्ति प्रदान करता है। व्यक्तिगत मुक्ति की अवधारणा मीरा के काव्य में आत्मानुभूति, भक्ति, प्रेम और वैराग्य के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। उनके अनुसार मोक्ष किसी कर्मकांड, बाह्य आडंबर या सामाजिक प्रतिष्ठा से नहीं, बल्कि निष्कपट भक्ति, समर्पण और ईश्वर के साथ आत्मिक एकत्व से प्राप्त होता है। उनका काव्य स्त्री-अस्मिता, आध्यात्मिक समानता तथा मानव की आंतरिक स्वतंत्रता का सशक्त दस्तावेज़ है।

वर्तमान समय में भी मीरा का काव्य सामाजिक समानता, आध्यात्मिक चेतना, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए प्रेरणास्रोत बना हुआ है। इस प्रकार मीरा बाई का काव्य केवल भक्ति साहित्य की अमूल्य धरोहर ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिक स्वतंत्रता और व्यक्तिगत मुक्ति के सार्वकालिक दर्शन का भी प्रभावशाली प्रतिनिधित्व करता है।

मूलशब्द – भक्ति आंदोलन, आध्यात्मिक स्वतंत्रता,व्यक्तिगत मुक्ति,कृष्ण भक्ति, आत्मसमर्पण, स्त्री, वैराग्य,मोक्ष

अध्यात्म-चिंतन लोकमानस की अंतर्यात्रा है। अध्यात्म-चिंतन की परंपरा उतनी ही प्राचीन है जितनी कि आदिम मानव की उत्पत्ति। अर्थात् जब से सृष्टि में मानव की उत्पत्ति हुई तब से अध्यात्म-चिंतन की परंपरा शुरू हुई। यह परंपरा लोकमानस की सुखात्मक, रागात्मक, हर्ष-ताल-लय तथा विभिन्न प्रकार की मन:स्थितियों की अकृत्रिम उद्गारों की अभिव्यक्ति है। अध्यात्म-चिंतन जो कि लोकानुभूति का एक ऐसा सरस, सरल एवं ललित हृदय भाव है जिसमें सृष्टि के प्रथम स्पंदन से अंतिम महाप्रयाण तक की यात्रा का लेखा-जोखा समाहित है।

हमारा देश प्राचीनकाल से अध्यात्म चिंतन की लीला भूमि रहा हैं। अपनी दैविक एवं भौतिक समृद्धि के साथ उसके मनीषी साधकों ने अध्यात्म के क्षेत्र में जिस चिरंतन सत्य का साक्षात्कार किया, उस प्रभास्वर रश्मिमाला से विश्व का प्रत्येक भू-भाग आलोकित हुआ। भारतीय अध्यात्म साहित्य एवं इतिहास इस बात का साक्षी है कि आध्यात्मिक गवेषणा और उसका सम्यक् आचरण उसके सत्यशोधी पृथ्वी पुत्रों के जीवन का एकमात्र अभिलक्षित लक्ष्य रहा है। हमारे देश ने इसी लोक मंगलकारिणी आध्यात्मिक उत्क्रांति के द्वारा चिरकाल से विश्व का नेतृत्व किया और इसी संजीवनी शक्ति से अनुप्राणित होकर आज भी हमारी वैदेशिक नीति विश्व को विस्मय-विमुग्ध करती हुई विजयिनी हो रही है।

साहित्य अपनी सीमाओं के भीतर अध्यात्म के जिस रूप को विकसित करता है वह अध्यात्म का भावपक्ष है। इस अध्यात्म की उपलब्धि हेतु मनुष्य को अंतर्मुखी होना पड़ता है। अंतर्मुखी व्यक्ति ही अपनी दिव्य प्रतिभा और प्रकृति के अनुरूप श्रद्धा के माध्यम से या विवेक से आत्म-ज्ञान को प्राप्त करता है। एक आत्म-ज्ञानी के चिंतन की अभिलाषा इस प्रकार है-

नास्था धर्मे न वसु-निचये नैव कामोपभोगे,

यद्भाव्यं तद् भवतु भगवन् पूर्व कार्मानुरूपम्।

एतत्प्राथ्र्य मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरे ऽपि,

त्वत्पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु ।।"[1]

अर्थात् भक्त भगवान से प्रार्थना करता है कि मेरी न तो धर्म में आस्था है, न धन संग्रह में, न काम भोग में। यह सब जो हो रहा है वह मेरे पूर्व कर्मों के अनुसार हो रहा है। मेरी तो मनोकामना यह है कि जन्म-जन्मांतरों में भी आपके युगल चरण कमलों में मेरी अटूट अचल भक्ति बनी रहे।

भारतीय अध्यात्म साहित्य के अंतर्गत "ऋचाएँ, पाठ, स्तोम, स्तोत्र, स्तवन, स्तुति, पद, भजन, कीर्तन आदि आते हैं। हिंदी में अब तक सूर, तुलसी, मीरां, नरसी आदि महान भक्त कवियों के जो मधुर पद प्रकाशित हुए हैं उनमें भक्ति का बड़ा मोहक रूप चित्रित किया गया है। इन भक्तों ने अपने आप को भगवान के प्रति सभी रूपों में अर्पित किया है-दास रूप में, सखा रूप में, वधू रूप में आदि।"

भारतीय जन-जीवन में अपने धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक अवदान के कारण भक्ति-मार्ग का विशिष्ट स्थान रहा है। यही वह मार्ग है जिसने सर्वप्रथम व्यापक रूप से संपूर्ण भारतीय. समाज को प्रभावित किया और एक बहुत ही लंबी अवधि तक उसका पथ-प्रदर्शन करते हुए लोक-समाज को अध्यात्म की दिशा प्रदान की। कई दार्शनिक आचार्यों, भक्त कवियों के साथ लोक संतों ने इसके प्रचार-प्रसार में अपना योगदान दिया है। संतों एवं भक्तों के द्वारा जो भक्ति की पावन धारा प्रवाहित हुई उसमें अवगाहन कर जन साधारण धन्य हो गया। अनेकता में एकता के गुण को समाहित करने में संतों की वाणी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। अध्यात्म-भक्ति भारत राष्ट्र की सर्वश्रेष्ठ पूँजी है। यह वाणी का विलास नहीं बल्कि जीवन का निचोड़ है। इसलिए भक्ति साहित्य को जीवित और अमर माना गया है।[2]

राजस्थान विश्व में अध्यात्म-शक्ति एवं भक्ति के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ के वीरों ने अपनी शक्ति के बल पर अपने जौहर दिखाए, वहीं यहाँ के संतों, भक्तों ने अपनी अनन्य भक्ति से परमात्मा का साक्षात्कार किया और लोक कल्याणकारी कार्य किये। यहाँ अध्यात्म-भक्ति चिंतन के विकास का श्रेय विविध संतों को दिया जाता है। जैसे-संत पीपा, संत धन्ना, गुरु जाम्भोजी, संत दादू, संत रैदास, संत रज्जब एवं मीरांबाई ने अध्यात्म-चिंतन का प्रचार एवं प्रसार किया। इन संतों ने प्राचीनकाल से चली आ रही अध्यात्म-भक्ति की परंपरा को सुचारू रूप से प्रवाहित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतीय संत परंपरा में मीरां का नाम बड़े आदर-भाव से लिया जाता है। मीरां लोक में गंगा एवं तुलसी की भाँति परम पवित्र मानी गई है। लोकसन्त भक्तमती मीरां के सामाजिक एवं आध्यात्मिक स्वरूप का चिंतन उनके काव्य में उल्लिखित एवं मुखरित है। मीरां की माँ श्रीकृष्ण की परम् भक्त थी। जनश्रुति के अनुसार कहा गया है कि उनके घर में गोपाल की मूर्ति विद्यमान थी। मीरां के दादा राव दूदाजी साधु-संतों की खूब सेवा करते थे। मीरां जब

तीन वर्ष की थी, तब कुछ साधु-संत रात्रि विश्राम के लिए अतिथि के रूप में मेड़ता के राजमहल में ठहरे। उन साधुओं के पास श्रीकृष्ण की एक मूर्ति हुआ करती थी जिसकी वे नित्य पूजा करते थे। नन्हीं बालिका (मीरां) के मन में इस मूर्ति (गिरधर) के लिए इतना आकर्षण जाग्रत हुआ कि वह उसे पाने के लिए आतुर हो गई। रात्रि को स्वप्न में स्वयं भगवान ने साधु को कहा कि यह मूर्ति मीरां को समर्पित कर देना क्योंकि मेरी उससे प्रीति हो गई है। उस साधु ने श्रीकृष्ण की मूर्ति मीरां को सुपुर्द कर दी, तब से मीरां का श्रीकृष्ण के प्रति माधुर्य भाव सदा के लिए बन गया। इस आध्यात्मिक स्वप्न का वर्णन मीरां के काव्य में वर्णित है-

माई री! हूँ तो सपना में परण्यों गोपाल।

मती करो म्हारी ब्याव सगाई, क्यूँ बाँधो जंजाल।।'[3]

मीरां के हृदय में अध्यात्म रूपी चिंतन के बीज बाल्यकाल में ही अंकुरित होने लगे थे। आज भी लोक में इस संबंध में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। एक कथा के अनुसार कहा गया है कि "किसी बारात दूल्हे को देखकर बालिका मीरां ने माँ से पूछा 'माँ! मेरा वर कौन है?' सहसा पूछे गये इस प्रश्न से चकित ने गोपाल की मूर्ति की ओर इशारा कर बताया कि यही तेरा दूल्हा है। तभी से 'गिरधर गोपाल' मीरां प्राणवल्लभ हो गए।"[4]

अपने भक्ति पदों (हरजस) के रूप में रचकर उन्होंने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। मीरां अध्यात्म चिंतन के मीरां ने श्रीकृष्ण के प्रति एकनिष्ठ भक्ति की आराधना की।

मीरां हो गई दीवानी, मैं कित करूँ रे,

अपने मंदिर में ढोलक बजावे।

ढोलक के नाद में राम नाम गावे,

फूट गया कलसा बिखर गया पाणी।

उड़ गया हंसा ये काया बिरानी,

हाट बजार में मीरां की जानी।

सद्गुरु के चरणों में मीरांबाई राणी।[5]

इस काव्य पद में मीरां ने बताया कि लोग कहते हैं कि मीरां दीवानी हो गई, पागल हो गई किंतु मैं क्या करूँ? मीरां के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है क्योंकि मीरां आत्मा रूपी घड़े को परमात्मा रूपी समुद्र में डूबो रही है अर्थात् सद्गुरु के चरणों में स्थान पा गई है। इस प्रकार मीरां परमात्मा के सानिध्य से राणी बन गई है। परमात्मा के दर्शन के बाद मीरां कहती है कि-

सहेलियाँ साजन घर आया हो।

बहोत दिनाँ की जोवती, बिरहिन पिव पाया हो।

रतन करूँ नेछावरी ले आरति साजूँ हो।

पिव का दिया सनेहड़ा, ताहि बहोत निवाजूँ हो।

पाँच सखी इकठी भई, मिलि मंगल गावै हो।

पिय की रली बधावणा, आनंद अंग न मावै हो।

हरि सागर सूँ नेहरो, नैणां बंध्या सनेह हो।

मीरां सखी के आंगणै, दूधा बूठा मेह हो।"[6]

अध्यात्म चिंतन की परंपरा को अक्षुण्ण रखते हुए मीरां ने मानव शरीर को पचरंग चोला अर्थात् अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल, वायु आदि से निर्मित बताया है। इस संबंध में वह कहती है-

मैं गिरधर रंग राती सैंया, मैं गिरधर रंग राती।

पचरंग चोला पहन सखी, मैं झुरमुट खेलन जाती।

ओहि झुरमुट मेरा साँई मिलेगा, खोल तनी गल गाती।

चंदा जाएगा सूरज जाएगा..।[7]

मीरां अपने काव्य में अध्यात्म चिंतन के स्वरूप को विस्तार देती हुई श्रीकृष्ण को लोक की रक्षा हेतु किए गए पूर्व कार्यों का स्मरण कराती हुई स्वयं की रक्षा करने का आग्रह करती है कि हे भगवान ! तुमने अनेक लोगों का कष्ट दूर किया है। द्रौपदी की लज्जा बचाने के लिए उसका चीर बढ़ा दिया। अपने भक्त प्रहलाद की रक्षा करने के लिए नृसिंह का रूप धारण किया। आपने डूबते गजराज को मगरमच्छ से बचाकर उसके प्राणों की रक्षा की। अब गिरधर मैं (मीरां) तुम्हारी दासी हूँ इस समय मेरी पीड़ा दूर करो। इस संबंध में मीरां के काव्य में अध्यात्म-चिंतन रूप दृष्टव्य है-

हरि! तुम हरो जन की पीर

द्रौपदी की लाज राखी, तुरत बढ़ायो चीर

भक्त कारण रूप नरहरि,

धर्यो आप सरीर हिरनकश्यप मार लीनो,

धर्यो नाहिन धीर बूड़तो गज ग्राह मार्यो,

कियो बाहर नीर दासी मीरां लाल गिरधर,

दुख जहाँ तहाँ पीर। [8]

भारतीय नारी का सांस्कृतिक प्रतीक है मीरां, जिसका चिंतन आध्यात्मिक है और जिसके माध्यम से भारतीय नारी की आत्मा को पहचाना जाता रहेगा। मीरां, नारी संतों में ईश्वर-प्राप्ति में लगी रहने वाली साधिकाओं में प्रमुख है। यद्यपि वे आज नहीं हैं परंतु वे हमारे लिए एक समृद्ध भक्ति-साहित्य की धरोहर छोड़ गई हैं जिसे उन्होंने रच-रचकर गाया और उसके द्वारा अपना ही नहीं अन्य भक्तों के मार्ग को प्रशस्त किया। उसके काव्य में सांसारिक बंधनों का त्याग तथा ईश्वर के प्रति समर्पण का भाव मिलता है।... मीरां के अनुसार कोई सत्य है तो केवल 'गिरधर गोपाल' जो कि एकमात्र सहायक हैं और भव-सागर के पार उतारने वाले खेवनहार हैं। अध्यात्म चिंतन में मीरां का श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम, एकनिष्ठ भक्ति, समर्पण की भावना लिए हुए काव्य में अभिव्यक्त भाव-

मै तो गिरधर के घर जाऊँ।

रैण दिनां बाके संग खेलूँ, ज्यूँ बाहि रिझाऊँ।

जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो देवे सोई खाऊँ।

जित बैठावे तितही बैहूँ, बेचे तो बिक जाऊँ।[9]

आध्यात्मिक चिंतन के रूप में सभी संत संप्रदायों ने लोकमानस को उपदेश दिए हैं जैसे-जीवन की नश्वरता, आत्मा-परमात्मा के मिलन का रहस्य, गुरु महिमा का गान, अंधविश्वासों का खंडन एवं नाम स्मरण की महत्ता के बारे में सार सहित बताया गया। उसी भाँति मीरां ने अपने काव्य में जीवन की नश्वरता, गुरु की महिमा, सत्संग की महानता को उजागर किया है। जीवन क्या है? इस अध्यात्म चिंतन के बारे में बहुत सरल एवं सरस लोक भाषा में समझाया है। मीरां अपने काव्य में अध्यात्म चिंतन करती हुई कहती हैं-

काया नगर रे ओळे दोळे ज्ञान पपईयो बोले रे

कागज री एक नाव बनाई धरी गंगाजल मांई रे

करमी धरमी पाप ऊकारीया, पानी नाव डुबोई रे

ज्ञान पपईयो बोले रे

माटी री एक मूरति बणाई रखी मंदिर रे

मांय पुजारी एक पूजण लागो वह कांई मुखड़े बोले रे

मेरे गुरुजी गेंद गुड़ाई पड़ी मैदान रे मांई रे

ज्ञानी हो जो ध्यान लगावे मूरख रो मन डोले रे

सत् रे संगत में टोले मईने गुरुजी बैठा अपनी धुन में रे

बाई मीरां ने गिरधर

मन की रह गई मन में रे।" [10]

मीरां के लिए वृंदावन और द्वारका तीर्थस्थल ही नहीं हैं, वे स्थल उनके आराध्य श्रीकृष्ण की लीलाभूमि हैं। इन लीला-स्थलों पर जाना मीरां के लिए अपने प्रिय गिरधर नागर के 'भाव-रूप' को पुनराविष्कृत करना है। इस संबंध में मीरां अध्यात्म चिंतन करती हुई कहती हैं-

आली! म्हाने लागे वृंदावन नीकी।

घर-घर तुलसी-ठाकुर पूजा, दरसण गोविंदजी को।

निरमल नीर बहत जमना में, भोजन दूध दही को।

रतन-सिंघासण आप विराजे, मुगट धर्यो तुलसी को।

कुंजन-कुंजन फिरत राधिका, सबद सुणत मुरली को।

मीरां के प्रभु गिरधर नागर, भजन बिना नर फीको।।"

वस्तुतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि मीरां के काव्य में भारतीय अध्यात्म चिंतन के गहरे भाव निहित हैं। एक प्रसंग में मीरां स्वयं कहती हैं कि 'राणा रूठे नगरी राखे, हरि रूठे कहँ जाणाँ' इस प्रकार की अध्यात्म चिंतन की परंपरा का यथार्थ रूप मीरां ने समझाया। भारतीय अध्यात्म चिंतन की परंपरा मीरां के काव्य में सुगंध की तरह व्याप्त है। इस सुगंध का शक्ति-केन्द्र माधुर्य है। एकनिष्ठ-प्रेम एवं माधुर्यमय अध्यात्म चिंतन की अपार संभावनाएँ मीरां के काव्य में उपस्थित हैं।

संदर्भ सूची -

1. पं. राजकुमार जैन : अध्यात्म पदावली, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1652 ई. पृ. 12

2. वही, पृ. 11

3. नंद चतुर्वेदी : मीरां संचयन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 09

4. वही, पृ. 09

5. बलदेव वंशी : संत मीरांबाई और उनकी पदावली, परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, 2019, पृ. 19

6. वही, पृ. 19

7. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहलः मीरांबाई की प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली, भारतीय विद्या मंदिर, कोलकाता, 2012, पृ. 184

8. शंभुसिंह मनोहर : मीरां पदावली, रिसर्च पब्लिकेशंस, जयपुर, 1969, पृ. 137

9. पेमाराम : मध्यकालीन राजस्थान में धार्मिक आंदोलन, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 1977, पृ. 181

10. भुवनेश जैन : रेगिस्तानी भीलों के गीत, राजस्थान अध्ययन केंद्र, महाराणा प्रताप भवन, जयपुर,